अध्याय - ४६

बाबा की गया यात्रा-बकरों की पूर्व जन्मकथा

इस अध्याय में शामा की काशी, प्रयाग व गया की यात्रा और बाबा किस प्रकार वहाँ इनके पूर्व ही (चित्र के रूप में) पहुँच गये तथा दो बकरों के गत जन्मों के इतिहास आदि का वर्णन किया गया है।

प्रस्तावना

हे साई! आपके श्रीचरण धन्य हैं और उनका स्मरण कितना सुखदायी है! आपके भवभयविनाशक स्वरूप का दर्शन भी धन्य है, जिसके फलस्वरूप कर्मबन्धन छिन्नभिन्न हो जाते हैं। यद्यपि अब हमें आपके सगुण स्वरूप का दर्शन नहीं हो सकता, फिर भी यदि भक्तगण आपके श्रीचरणों में श्रद्धा रखें तो आप उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव दे दिया करते हैं। आप एक अज्ञात आकर्षण शक्ति द्वारा निकटस्थ या दूरस्थ भक्तों को अपने समीप खींचकर उन्हें एक दयालु माता की नाईं हृदय से लगाते हैं। हे साई! भक्त नहीं जानते कि आपका निवास कहाँ है, परन्तु आप इस कुशलता से उन्हें प्रेरित करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप भासित होने लगता है कि आपका अभय हस्त उनके सिर पर है और यह आपकी ही कृपा-दृष्टि का परिणाम है कि उन्हें अज्ञात सहायता सदैव प्राप्त होती रहती है। अहंकार के वशीभूत होकर उच्च कोटि के विद्वान् और चतुर पुरुष भी इस भवसागर की दलदल में फँस जाते हैं। परन्तु हे साई! आप केवल अपनी शक्ति से असहाय और सुहृदय भक्तों को इस दलदल से उबारकर उनकी रक्षा किया करते हैं। पर्दे की ओट में छिपे रहकर आप ही तो सब न्याय कर रहे हैं। फिर भी आप ऐसा अभिनय करते हैं, जैसे उनसे आपका कोई सम्बन्ध ही न हो। कोई भी आप की संपूर्ण जीवन गाथा न जान सका। इसलिए यही श्रेयस्कर है कि हम अनन्य भाव से आपके श्रीचरणों की शरण में आ जायें और अपने पापों से मुक्त होने के लिये एकमात्र आपका ही नामस्मरण करते रहें। आप अपने निष्काम भक्तों की समस्त इच्छाएँ पूर्ण कर उन्हें परमानंद की प्राप्ति करा

दिया करते हैं। केवल आपके मधुर नाम का उच्चारण ही भक्तों के लिये अत्यन्त सुगम पथ है। इस साधन से उनमें राजसिक और तामसिक गुणों का ह्रास होकर सात्विक और धार्मिक गुणों का विकास होगा। इसके साथ ही साथ उन्हें क्रमशः विवेक, वैराग्य और ज्ञान की भी प्राप्ति हो जायेगी। तब उन्हें आत्मस्थित होकर गुरु से भी अभिन्नता प्राप्त होगी और इसका ही दूसरा अर्थ है गुरु के प्रति अनन्य भाव से शरणागत होना। इसका निश्चित प्रमाण केवल यही है कि तब हमारा मन स्थिर और शांत हो जाता है। इस शरणागति, भक्ति और ज्ञान की महत्ता अद्वितीय है, क्योंकि इनके साथ ही शांति, वैराग्य, कीर्त्ति, मोक्ष इत्यादि की भी प्राप्ति सहज ही हो जाती है।

यदि बाबा अपने भक्तों पर अनुग्रह करते हैं तो वे सदैव ही उनके समीप रहते हैं, चाहे भक्त कहीं भी क्यों न चला जाय, परन्तु वे तो किसी न किसी रूप में पहले ही वहाँ पहुँच जाते हैं। यह निम्नलिखित कथा से स्पष्ट है।

गया यात्रा

बाबा से परिचय होने के कुछ काल पश्चात् ही काकासाहेब दीक्षित ने अपने ज्येष्ठ पुत्र बापू का नागपुर में उपनयन संस्कार करने का निश्चय किया और लगभग उसी समय नानासाहेब चाँदोरकर ने भी अपने ज्येष्ठ पुत्र की ग्वालियर में शादी करने का कार्यक्रम बनाया। दीक्षित और चांदोरकर दोनों ही शिरडी आये और प्रेमपूर्वक उन्होंने बाबा को निमंत्रण दिया। तब उन्होंने अपने प्रतिनिधि शामा को ले जाने को कहा, परन्तु जब उन्होंने स्वयं पधारने के लिये उनसे आग्रह किया तो उन्होंने उत्तर दिया कि "बनारस और प्रयाग निकल जाने के पश्चात्, मैं शामा से पहले ही पहुँच जाऊँगा।" पाठकगण! कृपया इन शब्दों को थोड़ा ध्यान में रखें, क्योंकि ये शब्द बाबा की सर्वज्ञता के बोधक हैं।

बाबा की आज्ञा प्राप्त कर शामा ने इन उत्सवों में सम्मिलित होने के लिये प्रथम नागपुर, ग्वालियर और इसके पश्चात् काशी, प्रयाग और गया जाने का निश्चय किया। अप्पा कोते भी शामा के साथ जाने को तैयार हो गये। प्रथम तो वे दोनों उपनयन संस्कार में सम्मिलित होने नागपुर पहुँचे। वहाँ काकासाहेब दीक्षित ने शामा को दो सौ रुपये खर्च के निमित्त दिये। वहाँ से वे लोग विवाह में सम्मिलित होने ग्वालियर गये। वहाँ नानासाहेब चांदोरकर ने सौ रुपये और उनके संबंधी श्री. जठार ने भी सौ रुपये शामा को भेंट किये। फिर शामा काशी पहुँचे, जहाँ जठार ने लक्ष्मी-नारायण जी के भव्य मंदिर में उनका उत्तम स्वागत किया। अयोध्या में जठार के व्यवस्थापक ने भी शामा का अच्छा स्वागत किया। शामा और कोते अयोध्या में २१ दिन तथा काशी (बनारस) में दो मास

ठहर कर फिर गया को रवाना हो गये। गया में प्लेग फैलने का समाचार रेलगाड़ी में सुनकर इन लोगों को थोड़ी चिन्ता सी होने लगी। फिर भी रात्रि को वे गया स्टेशन पर उतरे और एक धर्मशाला में जाकर ठहरे। प्रातःकाल गयावाला पुजारी (पंडा), जो यात्रियों के ठहरने और भोजन की व्यवस्था किया करता था, आया और कहने लगा कि सब यात्री तो प्रस्थान कर चुके हैं, इसलिये अब आप भी शीघ्रता करें। शामा ने सहज ही उससे पूछा कि क्या गया में प्लेग फैला है? तब पुजारी ने कहा कि "नहीं। आप निर्विघ्न मेरे यहाँ पधारकर वस्तुस्थिति का स्वयं अवलोकन कर लें।" तब वे उसके साथ उसके मकान पर पहुँचे। उसका मकान क्या; एक विशाल महल था, जिसमें पर्याप्त यात्री विश्राम पा सकते थे। शामा को भी उसी स्थान पर ठहराया गया, जो उन्हें अत्यन्त प्रिय लगा। बाबा का एक बड़ा चित्र, जो कि मकान के अग्रिम भाग के ठीक मध्य में लगा था, देखकर वे अति प्रसन्न हो गये। उनका हृदय भर आया और उन्हें बाबा के शब्दों की स्मृति हो आई कि "मैं काशी और प्रयाग निकल जाने के पश्चात् शामा से आगे ही पहुँच जाऊँगा।" शामा की आँखों से अश्रुओं की धारा बहने लगी और उनके शरीर में रोमांच हो आया तथा कंठ रुँध गया और रोते-रोते उनकी घिग्घियाँ बँध गईं। पुजारी ने शामा की जो ऐसी स्थिति देखी तो उसने सोचा कि यह व्यक्ति प्लेग की सूचना पर भयभीत होकर रुदन कर रहा है, परन्तु शामा ने उसकी कल्पना के विपरीत ही प्रश्न किया कि यह बाबा का चित्र तुम्हें कहाँ से मिला? उसने उत्तर दिया कि मेरे दो-तीन सौ दलाल मनमाड और पुणताम्बे क्षेत्र में कार्य करते हैं तथा उस क्षेत्र से गया आने वाले यात्रियों की सुविधा का विशेष ध्यान रखा करते हैं। वहाँ शिरडी के साई महाराज की कीर्ति मुझे सुनाई पड़ी। लगभग बारह वर्ष हुए, मैंने स्वयं शिरडी जाकर बाबा के श्रीदर्शन का लाभ उठाया था और वहीं शामा के घर में लगे हुए उनके चित्र से मैं आकर्षित हुआ था। तभी बाबा की आज्ञा से शामा ने जो चित्र मुझे भेंट किया था, यह वही चित्र है। शामा की पूर्व स्मृति जागृत हो आई और जब गया वाले पुजारी को यह ज्ञात हुआ कि ये वही शामा हैं, जिन्होंने मुझे इस चित्र द्वारा अनुगृहीत किया था और आज मेरे यहाँ अतिथि बनकर ठहरे हैं तो उसके आनंद की सीमा न रही। दोनों बड़े प्रेमपूर्वक मिलकर हर्षित हुए। फिर पुजारी ने शामा का बादशाही ढंग से भव्य स्वागत किया। वह एक धनाढ्य व्यक्ति था। स्वयं डोली में और शामा को हाथी पर बिठाकर खूब घुमाया तथा हर प्रकार से उनकी सुख-सुविधा का ध्यान रखा। इस कथा ने सिद्ध कर दिया कि बाबा के वचन सत्य निकले। उनका अपने भक्तों पर कितना स्नेह था, इसको तो छोड़ो। वे तो सब प्राणियों पर एक-सा प्रेम किया करते थे और उन्हें अपना ही स्वरूप समझते थे। यह निम्नलिखित कथा से भी विदित हो जायेगा।

दो बकरे

एक बार जब बाबा लेंडी बाग से लौट रहे थे तो उन्होंने बकरों का एक झुंड आते देखा। उनमें से दो बकरों ने उन्हें अपनी ओर आकर्षित कर लिया। बाबा ने जाकर प्रेम-से उनका शरीर अपने हाथ से थपथपाया और उन्हें ३२ रुपये में खरीद लिया। बाबा का यह विचित्र व्यवहार देखकर भक्तों को आश्चर्य हुआ और उन्होंने सोचा कि बाबा तो इस सौदे में ठगा गये हैं, क्योंकि एक बकरे का मूल्य उस समय तीन-चार रुपये से अधिक न था और वे दो बकरे अधिक से अधिक आठ रुपये में प्राप्त हो सकते थे।

उन्होंने बाबा को कोसना प्रारंभ किया, परंतु बाबा शान्त बैठे रहे। जब शामा और तात्या ने बकरे मोल लेने का कारण पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया कि "मेरे कोई घर या स्त्री तो है नहीं, जिसके लिये मुझे पैसे इकट्ठे करके रखना है।" फिर उन्होंने चार सेर दाल बाजार से मँगाकर उन्हें खिलाई। जब उन्हें खिला-पिला चुके तो उन्होंने पुनः उनके मालिक को बकरे लौटा दिये। तत्पश्चात् ही उन्होंने उन बकरों के पूर्वजन्मों की कथा इस प्रकार सुनाई– "शामा और तात्या, तुम सोचते हो कि मैं इस सौदे में ठगा गया हूँ? परन्तु ऐसा नहीं, इनकी कथा सुनो। गत जन्म में ये दोनों मनुष्य थे और सौभाग्य से मेरे निकट संपर्क में थे। मेरे पास बैठते थे। ये दोनों सगे भाई थे और पहले इनमें परस्पर बहुत प्रेम था, परन्तु बाद में ये एक दूसरे के कट्टर शत्रु बन गये। बड़ा भाई आलसी था, किन्तु छोटा भाई बहुत परिश्रमी था, जिसने पर्याप्त धन उपार्जन कर लिया था, जिससे बड़ा भाई अपने छोटे भाई से ईर्ष्या किया करता था। इसलिये उसने छोटे भाई की हत्या करके उसका धन हड़पने की ठानी और अपना आत्मीय सम्बन्ध भूलकर वे एक दूसरे से बुरी तरह झगड़ने लगे। बड़े भाई ने अनेक प्रयत्न किये, परन्तु वह छोटे भाई की हत्या में असफल रहा। तब वे एक दूसरे के प्राणघातक शत्रु बन गये। एक दिन बड़े भाई ने छोटे भाई के सिर पर लाठी से प्रहार किया। तब बदले में छोटे भाई ने भी बड़े भाई के सिर पर कुल्हाड़ी चलाई और परिणामस्वरूप वहीं दोनों की मृत्यु हो गई। फिर अपने कर्मों के अनुसार ये दोनों बकरे की योनि को प्राप्त हुए। जैसे ही वे मेरे समीप से निकले तो मुझे उनके पूर्व इतिहास का स्मरण हो आया और मुझे दया आ गई। इसलिये मैंने उन्हें कुछ खिलाने-पिलाने तथा सुख देने का विचार किया। यही कारण है कि मैं ने इनके लिये पैसे खर्च किये, जो तुम्हें महँगे प्रतीत हुए हैं। तुम लोगों को यह लेन-देन अच्छा नहीं लगा, इसलिये मैंने उन बकरों को गड़ेरिये को वापस कर दिया है। सचमुच बकरे जैसे सामान्य प्राणियों के लिये भी बाबा को बेहद प्रेम था।

॥ श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥

अध्याय - ४७

पुनर्जन्म

वीरभद्रप्पा और चेनबसाप्पा (सर्प व मेंढक) की वार्त्ता।

गत अध्याय में बाबा द्वारा बताई गई दो बकरों के पूर्व जन्मों की वार्त्ता थी। इस अध्याय में कुछ और भी पूर्व जन्मों की स्मृतियों का वर्णन किया जाता है। प्रस्तुत कथा वीरभद्रप्पा और चेनबसाप्पा के सम्बन्ध में है।

प्रस्तावना

हे त्रिगुणातीत ज्ञानावतार श्रीसाई! तुम्हारी मूर्त्ति कितनी भव्य और सुन्दर है। हे अन्तर्यामिन्! तुम्हारे श्रीमुख की आभा धन्य है। उसका क्षणमात्र भी अवलोकन करने से पूर्व जन्मों के समस्त दुःखों का नाश होकर सुख का द्वार खुल जाता है। परन्तु हे मेरे प्यारे श्री साई! यदि तुम अपने स्वभाववश ही कुछ कृपाकटाक्ष करो, तभी इसकी कुछ आशा हो सकती है। तुम्हारी दृष्टिमात्र से ही हमारे कर्म-बन्धन छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और हमें आनन्द की प्राप्ति हो जाती है। गंगा में स्नान करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, परन्तु गंगामाई भी संतों के आगमन की सदैव उत्सुकतापूर्वक राह देखा करती हैं कि वे कब पधारें और मुझे अपनी चरण-रज से पावन करें। श्री साई तो संत-चूड़ामणि हैं। अब उनके द्वारा ही हृदय पवित्र बनाने वाली यह कथा सुनो।

सर्प और मेंढक

श्री साई बाबा ने कहा- "एक दिन प्रातःकाल ८ बजे जलपान के पश्चात् मैं घूमने निकला। चलते-चलते मैं एक छोटीसी नदी के किनारे पहुँचा। मैं अधिक थक चुका था, इस कारण वहाँ बैठकर कुछ विश्राम करने लगा। कुछ देर के पश्चात् ही मैंने हाथ-पैर धोये और स्नान किया। तब कहीं मेरी थकावट दूर हुई और मुझे कुछ प्रसन्नता

का अनुभव होने लगा। उस स्थान से एक पगडंडी और बैलगाड़ी के जाने का मार्ग था, जिसके दोनों ओर सघन वृक्ष थे। मलय-पवन मंद-मंद बह रहा था। मैं चिलम भर ही रहा था कि इतने में ही मेरे कानों में एक मेंढक के बुरी तरह टर्राने की ध्वनि पड़ी। मैं चकमक सुलगा ही रहा था कि इतने में एक यात्री वहाँ आया और मेरे समीप ही बैठकर उसने मुझे प्रणाम किया और घर पर पधारकर भोजन तथा विश्राम करने का आग्रह करने लगा। उसने चिलम सुलगा कर मेरी ओर पीने के लिए बढ़ाई। मेंढक के टर्राने की ध्वनि सुनकर वह उसका रहस्य जानने के लिये उत्सुक हो उठा। मैंने उसे बतलाया कि एक मेंढक कष्ट में है, जो अपने पूर्व जन्म के कर्मों का फल भोग रहा है। **पूर्व जन्म के कर्मों का फल इस जन्म में भोगना पड़ता है, अतः अब उसका चिल्लाना व्यर्थ है।** एक कश लेकर उसने चिलम मेरी ओर बढ़ाई। "थोड़ा देखूँ तो, आखिर बात क्या है?" ऐसा कहकर वह उधर जाने लगा। मैंने उसे बतलाया कि एक बड़े साँप ने एक मेंढक को मुँह में दबा लिया है, इस कारण वह चिल्ला रहा है। दोनों ही पूर्व जन्म में बड़े दुष्ट थे और अब इस शरीर में अपने कर्मों का फल भोग रहे हैं। आगन्तुक ने घटना-स्थल पर जाकर देखा कि सचमुच एक बड़े सर्प ने एक बड़े मेंढक को मुँह में दबा रखा है।

उसने वापस आकर मुझे बताया कि लगभग घड़ी-दो घड़ी में ही साँप मेंढक को निगल जायेगा। मैंने कहा - "नहीं, यह कभी नहीं हो सकता; मैं उसका संरक्षक पिता हूँ और इस समय यहाँ उपस्थित हूँ। फिर सर्प की क्या सामर्थ्य है कि मेंढक को निगल जाय? क्या मैं व्यर्थ ही यहाँ बैठा हूँ? देखो, मैं अभी उसकी किस प्रकार रक्षा करता हूँ।" दुबारा चिलम पीने के पश्चात् हम लोग उस स्थान पर गये। आगन्तुक डरने लगा और उसने मुझे आगे बढ़ने से रोका कि कहीं सर्प आक्रमण न कर दे। मैं उसकी बात की उपेक्षा कर आगे बढ़ा और दोनों से कहने लगा कि "अरे वीरभद्रप्पा! क्या तुम्हारे शत्रु को पर्याप्त फल नहीं मिल चुका है, जो उसे मेंढक की और तुम्हें यह सर्प की योनि प्राप्त हुई है? अरे! अब तो अपना वैमनस्य छोड़ो। यह बड़ी लज्जाजनक बात है। अब तो इस ईर्ष्या को त्यागो और शांति से रहो।" इन शब्दों को सुनकर सर्प ने मेंढक को छोड़ दिया और शीघ्र ही नदी में लुप्त हो गया। मेंढक भी कूदकर भागा और झाड़ियों में जा छिपा।

उस यात्री को बड़ा अचम्भा हुआ। उसकी समझ में न आया कि बाबा के शब्दों को सुनकर साँप ने मेंढक को क्यों छोड़ दिया और वीरभद्रप्पा व चेनबसाप्पा कौन थे? उनके

वैमनस्य का कारण क्या था? इस प्रकार के विचार उसके मन में उठने लगे। मैं उसके साथ उसी वृक्ष के नीचे लौट आया और धूम्रपान करने के पश्चात् उसे इसका रहस्य सुनाने लगाः -

"मेरे निवासस्थान से लगभग ४-५ मील की दूरी पर एक पवित्र स्थान था, जहाँ महादेव का एक मंदिर था। मंदिर अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण स्थिति में था, सो वहाँ के निवासियों ने उसका जीर्णोद्धार करने के हेतु कुछ चन्दा इकट्ठा किया। पर्याप्त धन एकत्रित हो गया और वहाँ नित्य पूजन की व्यवस्था कर मंदिर के निर्माण की योजनायें तैयार की गईं। एक धनाढ्य व्यक्ति को कोषाध्यक्ष नियुक्त कर उसको समस्त कार्य की देख-भाल का भार सौंप दिया गया। उसको कार्य, व्यय आदि का यथोचित विवरण रखकर ईमानदारी से सब कार्य करना था। सेठ तो एक उच्च कोटि का कंजूस था। उसने मरम्मत में अत्यन्त अल्पराशि व्यय की, इस कारण मंदिर का जीर्णोद्धार भी उसी अनुपात में हुआ। उसने सब राशि व्यय कर दी तथा कुछ अंश स्वयं हड़प लिया और उसने अपनी गाँठ से एक पाई भी व्यय न की। उसकी वाणी अधिक रसीली थी, इसलिये उसने लोगों को किसी प्रकार समझा-बुझा लिया और कार्य पूर्ववत् ही अधूरा रह गया। लोग फिर संगठित होकर उसके पास जाकर कहने लगे- सेठसाहेब! कृपया कार्य शीघ्र पूर्ण कीजिये। आपके प्रयत्न के अभाव में यह कार्य पूर्ण होना कदापि संभव नहीं। अतः आप पुनः योजना बनाइये। हम और भी चन्दा आपको वसूल करके देंगे। लोगों ने पुनः चन्दा एकत्रित कर सेठ को दे दिया। उसने रुपये तो ले लिये, परन्तु पूर्ववत् ही शांत बैठा रहा। कुछ दिनों के पश्चात् उसकी स्त्री को भगवान् शंकर ने स्वप्न दिया कि उठो और मंदिर पर कलश चढ़ाओ। जो कुछ भी तुम इस कार्य में व्यय करोगी, मैं उसका सौ गुना अधिक तुम्हें दूँगा। उसने यह स्वप्न अपने पति को सुना दिया। सेठ भयभीत होकर सोचने लगा कि यह कार्य तो ज्यादा रुपये खर्च कराने वाला है, इसलिये उसने यह बात हँसकर टाल दी कि यह तो एक निरा स्वप्न ही है और उस पर भी कहीं विश्वास किया जा सकता है? यदि ऐसा होता तो महादेव मेरे समक्ष ही प्रगट होकर यह बात मुझसे न कह देते? मैं क्या तुमसे अधिक दूर था? यह स्वप्न शुभदायक नहीं। यह तो पति-पत्नी के सम्बन्ध बिगाड़ने वाला है। इसलिये तुम बिलकुल शांत रहो। भगवान् को ऐसे द्रव्य की आवश्यकता ही कहाँ, जो दानियों की इच्छा के विरुद्ध एकत्र किया गया हो। वे तो सदैव प्रेम के भूखे हैं तथा प्रेम और भक्तिपूर्वक दिये गये एक तुच्छ ताँबे का सिक्का भी सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं। महादेव ने पुनः सेठानी को स्वप्न में कह दिया कि तुम अपने पति की व्यर्थ की बातों और उनके पास संचित धन की ओर ध्यान न

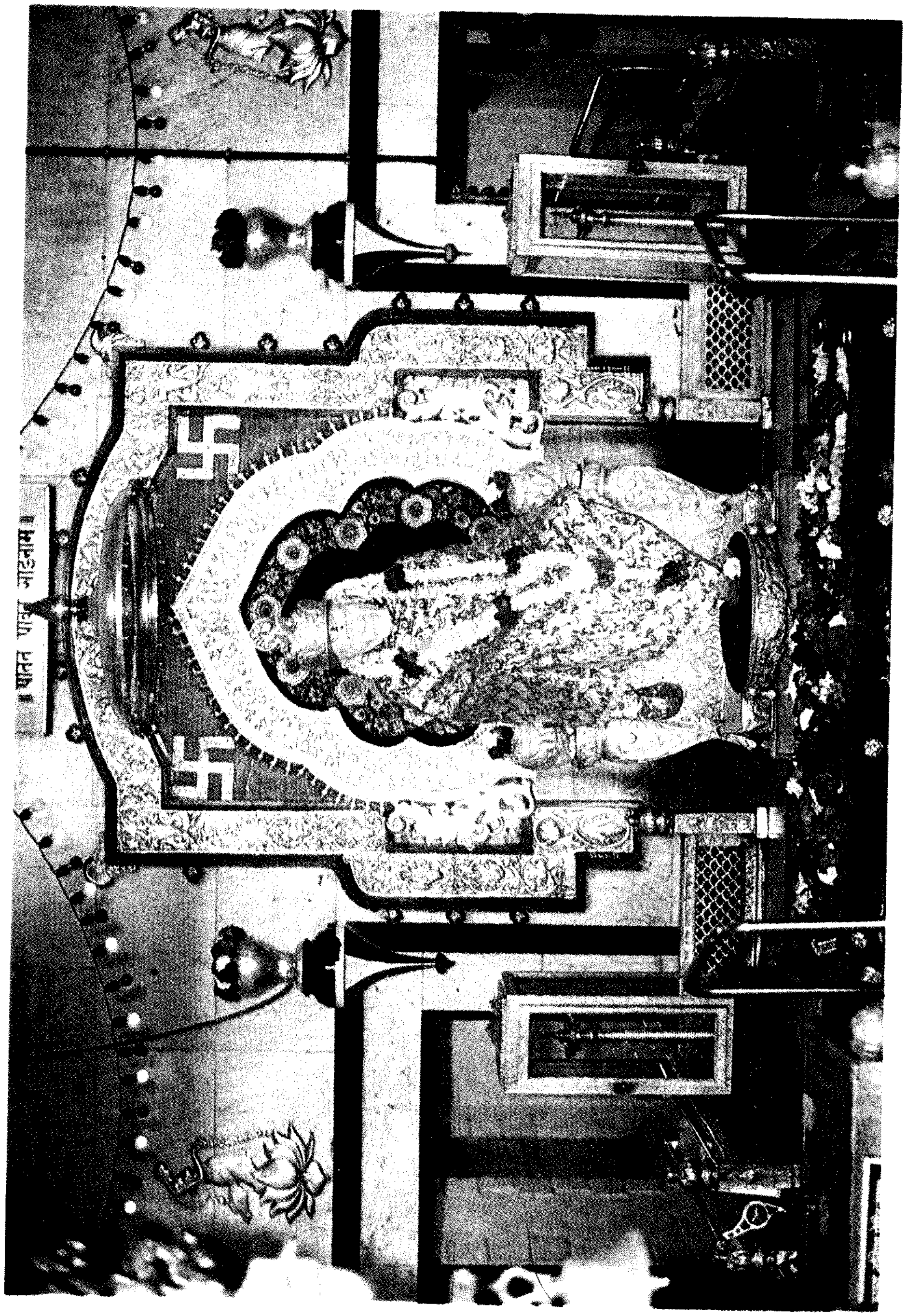

दो और न उनसे मंदिर बनवाने के लिए आग्रह ही करो। मैं तो तुम्हारे प्रेम और भक्ति का ही भूखा हूँ। जो कुछ भी तुम्हारी व्यय करने की इच्छा हो, सो अपने पास से करो। उसने अपने पति से विचार-विनिमय करके अपने पिता से प्राप्त आभूषणों को विक्रय करने का निश्चय किया। तब कृपण सेठ अशान्त हो उठा। इस बार उसने भगवान् को भी धोखा देने की ठान ली। उसने कौड़ी-मोल केवल एक हजार रुपयों में ही अपनी पत्नी के समस्त आभूषण स्वयं खरीद डाले और एक बंजर भूमि का भाग मंदिर के निमित्त लगा दिया, जिसे उसकी पत्नी ने भी चुपचाप स्वीकार कर लिया। सेठ ने जो भूमि दी, वह उसकी स्वयं की न थी, वरन् एक निर्धन स्त्री 'दुबकी' की थी, जो इसके यहाँ दो सौ रुपयों में गहन रखी हुई थी। दीर्घकाल तक वह ऋण चुकाकर उसे वापस न ले सकी, इसलिये उस धूर्त कृपण ने अपनी स्त्री, 'दुबकी' और भगवान् को धोखा दे दिया। भूमि पथरीली होने के कारण उसमें उत्तम ऋतु में भी कोई पैदावार न होती थी। इस प्रकार यह लेन-देन समाप्त हुआ। भूमि उस मंदिर के पुजारी को दे दी गई, जो उसे पाकर बहुत प्रसन्न हुआ।

कुछ समय के पश्चात् एक विचित्र घटना घटित हुई। एक दिन बहुत जोरों से झंझावात आया और अति वृष्टि हुई। उस कृपण के घर पर बिजली गिरी और फलस्वरूप पति-पत्नी दोनों की मृत्यु हो गई। दुबकी ने भी अंतिम श्वास छोड़ दी। अगले जन्म में वह कृपण मथुरा के एक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ और उसका नाम 'वीरभद्रप्पा' रखा गया। उसकी धर्मपत्नी उस मंदिर के पुजारी के घर कन्या होकर उत्पन्न हुई और उसका नाम 'गौरी' रखा गया। 'दुबकी' पुरुष बनकर मंदिर के गुरव (सेवक) वंश में पैदा हुई और उसका नाम चेनबसाप्पा रखा गया। पुजारी मेरा मित्र था और बहुधा मेरे पास आता जाता, वार्त्तालाप करता और मेरे साथ चिलम पिया करता था। उसकी पुत्री गौरी भी मेरी भक्त थी। वह दिनोंदिन सयानी होती जा रही थी, जिससे उसका पिता भी उसके हाथ पीले करने की चिंता में रहता था। मैंने उससे कहा कि चिंता की कोई आवश्यकता नहीं, वर स्वयं तुम्हारे घर लड़की की खोज में आ जायेगा। कुछ दिनों के पश्चात् ही उसी की जाति का वीरभद्रप्पा नामक एक युवक भिक्षा माँगते-माँगते उसके घर पहुँचा। मेरी सम्मति से गौरी का विवाह उसके साथ सम्पन्न हो गया। पहले तो वह मेरा भक्त था, किन्तु अब वह कृतघ्न बन गया। इस नूतन जन्म में भी उसकी धन-तृष्णा नष्ट न हुई। उसने मुझसे कोई उद्योग धंधा सुझाने को कहा, क्योंकि इस समय वह विवाहित जीवन व्यतीत कर रहा था। तभी एक विचित्र घटना हुई। अचानक **ही**

प्रत्येक वस्तुओं के भाव ऊँचे चढ़ गये। **गौरी के भाग्य से जमीन की माँग अधिक होने** लगी और समस्त भूमि एक लाख रुपयों में, आभूषणों के मूल्य से १०० गुना अधिक मूल्य में बिक गई। ऐसा निर्णय हुआ कि ५० हजार रुपये नगद और २००० रुपये प्रतिवर्ष किश्त पर चुकता कर दिये जायेंगे। सबको यह लेनदेन स्वीकार था, परन्तु धन में हिस्से के कारण उनमें परस्पर विवाद होने लगा। वे परामर्श लेने मेरे पास आये और मैंने कहा कि यह भूमि तो भगवान् की है, जो पुजारी को सौंपी गई थी। **इसकी स्वामिनी 'गौरी' ही है और एक पैसा भी उसकी इच्छा के विरुद्ध खर्च करना उचित नहीं तथा उसके पति का इस पर कोई अधिकार नहीं है।** मेरे निर्णय को सुनकर वीरभद्रप्पा मुझसे क्रोधित होकर कहने लगा कि तुम गौरी को फुसलाकर उसका धन हड़पना चाहते हो। इन शब्दों को सुनकर मैं भगवत् नाम लेकर चुप बैठ गया। वीरभद्र ने अपनी स्त्री को पीटा भी। गौरी ने दोपहर के समय आकर मुझसे कहा कि आप उन लोगों के कहने का बुरा न मानें। मैं तो आपकी लड़की हूँ। मुझ पर कृपादृष्टि ही रखें। वह इस प्रकार मेरी शरण में आई तो मैंने उसे वचन दे दिया कि **मैं सात समुद्र पार कर भी तुम्हारी रक्षा करूँगा।** तब उस रात्रि को गौरी को एक दृष्टांत हुआ। महादेव ने आकर कहा कि यह सब सम्पत्ति तुम्हारी ही है और इसमें से किसी को कुछ न दो। चेनबसाप्पा की सलाह से कुछ राशि मंदिर के कार्य के लिये खर्च करो। यदि और किसी भी कार्य में तुम्हें खर्च करने की इच्छा हो तो मसजिद में जाकर बाबा (स्वयं मैं) के परामर्श से करो। गौरी ने अपना दृष्टांत मुझे सुनाया और मैंने इस विषय में उचित सलाह भी दी। मैंने उससे कहा कि मूलधन तो तुम स्वयं ले लो और व्याज की आधी रकम चेनबसाप्पा को दे दो। वीरभद्र का इसमें कोई संबन्ध नहीं है। जब मैं यह बात कर ही रहा था, वीरभद्र और चेनबसाप्पा दोनों ही वहाँ झगड़ते हुए आये। मैंने दोनों को शांत करने का प्रयत्न किया तथा गौरी को हुआ महादेव का स्वप्न भी सुनाया। वीरभद्र क्रोध से उन्मत्त हो गया और चेनबसाप्पा को टुकड़े-टुकड़े कर मार डालने की धमकी देने लगा। चेनबसाप्पा बड़ा डरपोक था। वह मेरे पैर पकड़कर रक्षा की प्रार्थना करने लगा। तब मैंने शत्रु के पाश से उसका छुटकारा करा दिया। कुछ समय पश्चात् ही दोनों की मृत्यु हो गई। वीरभद्र सर्प बना और चेनबसाप्पा मेंढक। चेनबसाप्पा की पुकार सुनकर और अपने पूर्व वचन की स्मृति करके यहाँ आया और इस तरह से उसकी रक्षा कर मैंने अपने वचन पूर्ण किये। **संकट के समय भगवान् दौड़कर अपने भक्त के पास जाते हैं। उसने मुझे यहाँ भेजकर चेनबसाप्पा की रक्षा कराई। यह सब ईश्वरीय लीला ही है।"**

शिक्षा

इस कथा की यही शिक्षा है कि **जो जैसा बोता है, वैसा ही काटता है, जब तक कि भोग पूर्ण नहीं होते।** पिछला ऋण और अन्य लोगों के साथ लेन-देन का व्यवहार जब तक पूर्ण नहीं होता, तब तक छुटकारा भी संभव नहीं है। धनतृष्णा मनुष्य का पतन कर देती है और अन्त में इससे ही वह विनाश को प्राप्त होता है।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥

अध्याय - ४८

भक्तों के संकट निवारण

(१) शेवड़े और (२) सपटणेकर की कथाएँ।

अध्याय प्रारम्भ करने से पूर्व किसी ने हेमाडपंत से प्रश्न किया कि साईबाबा गुरु थे या सद्‌गुरु? इसके उत्तर में हेमाडपंत सद्‌गुरु के लक्षणों का निम्नप्रकार वर्णन करते हैं।

सद्‌गुरु के लक्षण

जो वेद और वेदान्त तथा छहों शास्त्रों की शिक्षा प्रदान करके ब्रह्मविषयक मधुर व्याख्यान देने में पारंगत हो तथा जो अपने श्वासोच्छ्‌वास क्रियाओं पर नियंत्रण कर सहज ही मुद्रायें लगाकर अपने शिष्यों को मंत्रोपदेश दे निश्चित अवधि में यथोचित संख्या का जप करने का आदेश दे और केवल अपने वाक्‌चातुर्य से ही उन्हें जीवन के अंतिम ध्येय का दर्शन कराता हो तथा जिसे स्वयं आत्मसाक्षात्कार न हुआ हो, वह सद्‌गुरु नहीं। वरन् जो अपने आचरणों से लौकिक व पारलौकिक सुखों से विरक्ति की भावना का निर्माण कर हमें आत्मानुभूति का रसास्वादन करा दे तथा जो अपने शिष्यों को क्रियात्मक और प्रत्यक्ष ज्ञान (आत्मानुभूति) करा दे, उसे ही सद्‌गुरु कहते हैं। जो स्वयं ही आत्मसाक्षात्कार से वंचित हैं, वे भला अपने अनुयायियों को किस प्रकार अनुभूति करा सकते हैं? सद्‌गुरु स्वप्न में भी अपने शिष्य से कोई लाभ या सेवा-शुश्रूषा की लालसा नहीं करते, वरन् स्वयं उनकी सेवा करने को ही उद्यत रहते हैं। उन्हें यह कभी भी भान नहीं होता है कि मैं कोई महान् हूँ और मेरा शिष्य मुझसे तुच्छ है, अपितु उसे अपने ही सदृश (या ब्रह्मस्वरूप) समझा करते हैं। सद्‌गुरु की मुख्य विशेषता यही है कि उनके हृदय में सदैव परम शांति विद्यमान रहती है। वे कभी अस्थिर या अशांत नहीं होते और न उन्हें अपने ज्ञान का ही लेशमात्र गर्व होता है। उनके लिए राजा-रंक, स्वर्ग-अपवर्ग **सब एक ही समान** हैं।

हेमाडपंत कहते हैं कि मुझे गत जन्मों के शुभ संस्कारों के **परिणामस्वरूप श्री साईबाबा** सदृश सद्‌गुरु के चरणों की प्राप्ति तथा उनके कृपापात्र बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वे अपने यौवन काल में चिलम के अतिरिक्त कुछ संग्रह न किया करते थे। न उनके बाल-बच्चे तथा मित्र थे, न घरबार था और न उन्हें किसी प्रकार का आश्रय प्राप्त था। १८ वर्ष की अवस्था से ही उनका मनोनिग्रह बड़ा विलक्षण था। वे निर्भय होकर निर्जन स्थानों में विचरण करते एवं सदा आत्मलीन रहते थे। वे सदैव भक्तों की निःस्वार्थ भक्ति देखकर ही उनकी इच्छानुसार आचरण किया करते थे। उनका कथन था कि **मैं सदा भक्त के पराधीन रहता हूँ।** जब वे शरीर में थे, उस समय भक्तों ने जो अनुभव किये, उनके समाधिस्थ होने के पश्चात् आज भी जो उनके शरणागत हो चुके हैं, उन्हें उसी प्रकार के अनुभव होते रहते हैं। भक्तों को तो केवल इतना ही यथेष्ठ है कि यदि वे अपने हृदय को भक्ति और विश्वास का दीपक बनाकर उसमें प्रेम की ज्योति प्रज्वलित करें तो ज्ञानज्योति (आत्मसाक्षात्कार) स्वयं प्रकाशित हो उठेगी। **प्रेम के अभाव में शुष्क ज्ञान व्यर्थ है। ऐसा ज्ञान किसी को भी लाभप्रद नहीं हो सकता,** प्रेमभाव में संतोष नहीं होता। इसलिए हमारा प्रेम असीम और अटूट होना चाहिए। प्रेम की कीर्ति का गुणगान कौन कर सकता है, जिसकी तुलना में समस्त वस्तुएँ तुच्छ जान पड़ती हैं? प्रेमरहित पठनपाठन सब निष्फल है। प्रेमांकुर के उदय होते ही भक्ति, वैराग्य, शांति और कल्याणरूपी सम्पत्ति सहज ही प्राप्त हो जाती है। जब तक किसी वस्तु के लिए प्रेम उत्पन्न नहीं होता, तब तक उसे प्राप्त करने की भावना ही उत्पन्न नहीं होती। इसलिए **जहाँ व्याकुलता और प्रेम है, वहाँ भगवान् स्वयं प्रगट हो जाते हैं। भाव में ही प्रेम अंतर्निहित है और वही मोक्ष का कारणीभूत है।** यदि कोई व्यक्ति कलुषित भाव से भी किसी सच्चे संत के चरण पकड़ ले तो यह निश्चित है कि वह अवश्य तर जायेगा। ऐसी ही कथा नीचे दर्शाई गई है।

श्री. शेवड़े

अक्कलकोट (सोलापुर जिला) के श्री. सपटणेकर वकालत का अध्ययन कर रहे थे। एक दिन उनकी अपने सहपाठी श्री. शेवड़े से भेंट हुई। अन्य और भी विद्यार्थी वहाँ एकत्रित हुए और सब ने अपनी-अपनी अध्ययन संबंधी योग्यता का परस्पर परीक्षण किया। प्रश्नोत्तरों से विदित हो गया कि सब से कम अध्ययन श्री. शेवड़े का है और वे परीक्षा में बैठने के अयोग्य हैं। जब सब मित्रों ने मिलकर उनका उपहास किया, तब शेवड़े ने कहा कि "यद्यपि मेरा अध्ययन अपूर्ण है तो भी मैं परीक्षा में अवश्य उत्तीर्ण हो जाऊँगा। मेरे साईबाबा ही सबको सफलता देने वाले हैं।" श्री. सपटणेकर को यह

सुनकर आश्चर्य हुआ और उन्होंने श्री. शेवड़े से पूछा कि ये साईबाबा कौन हैं, जिनका तुम इतना गुणगान कर रहे हो? उन्होंने उत्तर दिया कि वे एक फकीर हैं, जो शिरडी (अहमदनगर) की एक मसजिद में निवास करते हैं। वे महान् सत्पुरुष हैं। ऐसे अन्य संत भी हो सकते हैं, परन्तु वे उनसे अद्वितीय हैं। **जब तक पूर्व जन्म के शुभ संस्कार संचित न हों, तब तक उनसे भेंट होना दुर्लभ है।** मेरी तो उन पर पूर्ण श्रद्धा है। उनके श्रीमुख से निकले वचन कभी असत्य नहीं होते। उन्होंने ही मुझे विश्वास दिलाया है कि मैं अगले वर्ष परीक्षा में अवश्य उत्तीर्ण हो जाऊँगा। मेरा भी अटल विश्वास है कि मैं उनकी कृपा से परीक्षा में अवश्य ही सफलता पाऊँगा। श्री. सपटणेकर को अपने मित्र के ऐसे विश्वास पर हँसी आ गई और साथ ही साथ श्री साईबाबा का भी उन्होंने उपहास किया। भविष्य में जब शेवड़े दोनों परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो गये, तब सपटणेकर को यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ।

श्री. सपटणेकर

श्री. सपटणेकर परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात् अक्कलकोट में रहने लगे और वहीं उन्होंने अपनी वकालत प्रारम्भ कर दी। दस वर्षों के पश्चात् सन् १९१३ में उनके इकलौते पुत्र की गले की बीमारी से मृत्यु हो गई, जिससे उनका हृदय विचलित हो उठा। मानसिक शांति प्राप्त करने हेतु उन्होंने पंढरपुर, गाणगापुर और अन्य तीर्थस्थानों की यात्रा की. परन्तु उनकी अशांति पूर्ववत् ही बनी रही। उन्होंने वेदांत का भी श्रवण किया, परन्तु वह भी व्यर्थ ही सिद्ध हुआ। अचानक उन्हें शेवड़े के वचनों तथा श्री साईबाबा के प्रति उनके विश्वास की स्मृति हो आई और उन्होंने विचार किया कि मुझे भी शिरडी जाकर बाबा के दर्शन करना चाहिए। वे अपने छोटे भाई पंडितराव के साथ शिरडी आये। बाबा के दर्शन कर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। जब उन्होंने समीप जाकर नमस्कार करके शुद्ध भावना से श्रीफल भेंट किया तो बाबा तुरन्त क्रोधित हो उठे और बोले कि "यहाँ से निकल जाओ।" सपटणेकर का सिर झुक गया और वे कुछ हटकर पीछे बैठ गये। वे यह जानना चाहते थे कि किस प्रकार उनके समक्ष उपस्थित होना चाहिए। किसी ने उन्हें बाला शिम्पी का नाम सुझा दिया। सपटणेकर उनके पास गये और उनसे सहायता करने की प्रार्थना करने लगे। तब वे दोनों बाबा का एक चित्र मोल लेकर मसजिद को आये। बाला शिम्पी ने अपने हाथ में चित्र लेकर बाबा के हाथ में दे दिया और पूछा कि यह किसका चित्र है? बाबा ने सपटणेकर की ओर संकेत कर कहा कि "यह तो मेरे यार का है।" यह कहकर वे हँसने लगे और साथ ही सब भक्त मंडली भी हँसने लगी। बाला शिम्पी के इशारे पर जब सपटणेकर उन्हें प्रणाम करने लगे तो वे पुनः चिल्ला पड़े

कि "बाहर निकलो।" सपटणेकर की समझ में नहीं आता था कि वे क्या करें। तब वे दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हुए बाबा के सामने बैठ गये, परन्तु बाबा ने उन्हें तुरन्त ही बाहर निकलने की आज्ञा दी। वे दोनों बहुत ही निराश हुए। उनकी आज्ञा कौन टाल सकता था? आखिर सपटणेकर खिन्न-हृदय शिरडी से वापस चले आये। उन्होंने मन ही मन प्रार्थना की कि "हे साई! मैं आपसे दया की भिक्षा माँगता हूँ। कम से कम इतना ही आश्वासन दे दीजिये कि मुझे भविष्य में कभी न कभी आपके श्री दर्शनों की अनुमति मिल जायेगी।"

श्रीमती सपटणेकर

एक वर्ष बीत गया, फिर भी उनके मन में शांति न आई। वे गाणगापुर गये, जहाँ उनके मन में और अधिक अशांति बढ़ गई। अतः वे माढेगाँव विश्राम के लिये पहुँचे और वहाँ से ही काशी जाने का निश्चय किया। प्रस्थान करने के दो दिन पूर्व उनकी पत्नी को स्वप्न हुआ कि वह स्वप्न में एक गागर ले लक्कड़शाह के कुएँ पर जल भरने जा रही है। वहाँ नीम के नीचे एक फकीर बैठा है। सिर पर एक कपड़ा बँधा हुआ है। फकीर उसके पास आकर कहने लगा कि "मेरी प्रिय बच्ची! तुम क्यों व्यर्थ कष्ट उठा रही हो? मैं तुम्हारी गागर निर्मल जल से भर देता हूँ।" तब फकीर के भय से वह खाली गागर लेकर ही लौट आई। फकीर भी उसके पीछे-पीछे चला आया। इतने में ही घबराहट में उसकी निद्रा भंग हो गई और उसने आँखें खोल दीं। यह स्वप्न उसने अपने पति को सुनाया। उन्होंने इसे एक शुभ शकुन जाना और वे दोनों शिरडी को रवाना हो गये। जब वे मसजिद पहुँचे तो बाबा वहाँ उपस्थित न थे। वे लेण्डी बाग गये हुये थे। उनके लौटने की प्रतीक्षा में वे वहीं बैठे रहे। जब बाबा लौटे तो उन्हें देखकर उनकी पत्नी को बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि स्वप्न में जिस फकीर के उसने दर्शन किये थे, उनकी आकृति बाबा से बिलकुल मिलती-जुलती थी। उसने अति आदरसहित बाबा को प्रणाम किया और वहीं बैठे-बैठे उन्हें निहारने लगी। उसका विनम्र स्वभाव देखकर बाबा अत्यन्त प्रसन्न हो गये। अपनी पद्धति के अनुसार वे एक तीसरे व्यक्ति को अपने अनोखे ढंग से एक कहानी सुनाने लगे – "मेरे हाथ, उदर, शरीर तथा कमर में बहुत दिनों से दर्द हुआ करता था। मैंने अनेक उपचार किये, परन्तु मुझे कोई लाभ न पहुँचा। मैं औषधियों से ऊब उठा, क्योंकि मुझे उनसे कोई लाभ न हो रहा था, परन्तु अब मुझे बड़ा अचम्भा हो रहा है कि मेरी समस्त पीड़ायें एकदम ही जाती रहीं।" यद्यपि किसी का नाम नहीं लिया गया था, परन्तु यह चर्चा स्वयं श्रीमती सपटणेकर की थी। उनकी पीड़ा जैसा बाबा ने अभी कहा, सर्वथा मिट गई और वे अत्यन्त प्रसन्न हो गईं।

संतति-दान

तब श्री. सपटणेकर दर्शनों के लिए आगे बढ़े, परन्तु उनका पूर्वोक्त वचनों से ही स्वागत हुआ कि "बाहर निकल जाओ।" इस बार वे बहुत धैर्य और नम्रता धारण करके आये थे। उन्होंने कहा कि पिछले कर्मों के कारण ही बाबा मुझसे अप्रसन्न हैं और उन्होंने अपना चरित्र सुधारने का निश्चय कर लिया और बाबा से एकान्त में भेंट करके अपने पिछले कर्मों की क्षमा माँगने का निश्चय किया। उन्होंने वैसा ही किया भी और अब जब उन्होंने अपना मस्तक उनके श्रीचरणों पर रखा तो बाबा ने उन्हें आशीर्वाद दिया। अब सपटणेकर उनके चरण दबाते हुए बैठे ही थे कि इतने में एक गड़ेरिन आई और बाबा की कमर दबाने लगी। तब वे सदैव की भाँति एक बनिये की कहानी सुनाने लगे। जब उन्होंने उसके जीवन के अनेकों परिवर्त्तन तथा उसके इकलौते पुत्र की मृत्यु का हाल सुनाया तो सपटणेकर को अत्यंत आश्चर्य हुआ कि जो कथा वे सुना रहे हैं, वह तो मेरी ही है। उन्हें बड़ा अचम्भा हुआ कि उनको मेरे जीवन की प्रत्येक बात का पता कैसे चल गया? अब उन्हें विदित हो गया कि बाबा अन्तर्यामी हैं और सबके हृदय का पूरा-पूरा रहस्य जानते हैं। यह विचार उनके मन में आया ही था कि गड़ेरिन से वार्त्तालाप चालू रखते हुए बाबा सपटणेकर की ओर संकेत कर कहने लगे कि "यह भला आदमी मुझ पर दोषारोपण करता है कि मैंने ही इसके पुत्र को मार डाला है। क्या मैं लोगों के बच्चों के प्राण-हरण करता हूँ? फिर ये महाशय मसजिद में आकर अब क्यों चीख-पुकार मचाते हैं? अब मैं एक काम करूँगा। अब मैं उसी बालक को फिर से इनकी पत्नी के गर्भ में ला दूँगा।" - ऐसा कहकर बाबा ने अपना वरद हस्त सपटणेकर के सिर पर रखा और उसे सान्त्वना देते हुए कहा कि **"ये चरण अधिक पुरातन तथा पवित्र हैं। जब तुम चिंता से मुक्त होकर मुझ पर पूरा विश्वास करोगे, तभी तुम्हें अपने ध्येय की प्राप्ति हो जायेगी।"** सपटणेकर का हृदय गद्गद हो उठा। तब अश्रुधारा से उनके चरण धोकर वे अपने निवासस्थान पर लौट आये और फिर पूजन की तैयारी कर नैवेद्य आदि लेकर वे सपत्नीक मसजिद में आये। वे इसी प्रकार नित्य नैवेद्य चढाते और बाबा से प्रसाद ग्रहण करते रहे। मसजिद में अपार भीड़ होते हुए भी वे वहाँ जाकर उन्हें बार-बार नमस्कार करते थे। एक दूसरे से सिर टकराते देखकर बाबा ने उनसे कहा कि **"प्रेम तथा श्रद्धा द्वारा किया हुआ एक ही नमस्कार मुझे पर्याप्त है।"** उसी रात्रि को उन्हें चावड़ी का उत्सव देखने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ और उन्हें बाबा ने पांडुरंग के रूप में दर्शन दिये।

जब वे दूसरे दिन वहाँ से प्रस्थान करने लगे तो उन्होंने विचार किया कि पहले दक्षिणा में बाबा को एक रुपया दूँगा। यदि उन्होंने और माँगे तो अस्वीकार करने के बजाय एक रुपया और भेंट में चढ़ा दूँगा। फिर भी यात्रा के लिए शेष द्रव्यराशि पर्याप्त होगी। जब उन्होंने मसजिद जाकर बाबा को एक रुपया दक्षिणा दी तो बाबा ने भी उनकी इच्छा जानकर एक रुपया उनसे और माँगा। जब सपटणेकर ने उसे सहर्ष दे दिया तो बाबा ने भी उन्हें आशीर्वाद देकर कहा कि "यह श्रीफल ले जाओ और इसे अपनी पत्नी की गोद में रखकर निश्चिंत होकर घर जाओ।" उन्होंने वैसा ही किया और एक वर्ष के पश्चात् ही उन्हें एक पुत्र प्राप्त हुआ। आठ मास का शिशु लेकर वह दम्पति फिर शिरडी को आये और बाबा के चरणों पर बालक को रखकर फिर इस प्रकार प्रार्थना करने लगे कि "हे श्रीसाईनाथ! आपके ऋण हम किस प्रकार चुका सकेंगे? आपके श्रीचरणों में हमारा बार-बार प्रणाम है। हम दीनों पर आप सदैव कृपा करते रहियेगा, क्योंकि हमारे मन में सोते-जागते हर समय न जाने क्या-क्या संकल्प-विकल्प उठा करते हैं। आपके भजन में ही हमारा मन मग्न हो जाये, ऐसा आशीर्वाद दीजिए।"

उस पुत्र का नाम 'मुरलीधर' रखा गया। बाद में उनके दो पुत्र (भास्कर और दिनकर) और उत्पन्न हुए। इस प्रकार सपटणेकर दम्पति को अनुभव हो गया कि बाबा के वचन कभी असत्य और अपूर्ण नहीं निकले।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु।।